प्रास्ताविक निवेदन ।

§१. विविध तीर्थकल्प

श्रीजिनप्रभसूरि रचित कल्पप्रदीप–अथवा विशेषतया प्रसिद्ध विविध तीर्थकल्प–नामका यह ग्रन्थ जैन साहित्यकी एक विशिष्ट वस्तु है । ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों प्रकारके विषयोंकी दृष्टिसे इस ग्रन्थका बहुत कुछ महत्त्व है । जैन साहित्य-ही-में नहीं, समग्र भारतीय साहित्यमें भी इस प्रकारका कोई दूसरा ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ । यह ग्रन्थ, विक्रमकी १४ वीं शताब्दीमें, जैन धर्मके जितने पुरातन और विद्यमान प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थस्थान थे उनके सम्बन्धकी प्रायः एक प्रकारकी 'गाईड-बुक' है । इसमें वर्णित उन उन तीर्थोंका संक्षिप्त रूपसे स्थानवर्णन भी है और यथाज्ञात इतिहास भी है ।

§२. ग्रन्थकार आचार्य

ग्रन्थकार अपने समयके एक बडे भारी विद्वान् और प्रभावशाली जैन आचार्य थे । जिस तरह, विक्रमकी १७ वीं शताब्दीमें, मुगल सम्राट् अकबर बादशाहके दरबारमें जैन जगद्गुरु हीरविजय सूरिने शाही सन्मान प्राप्त किया था, उसी तरह जिनप्रभ सूरिने भी, १४ वीं शताब्दीमें तुघलक सुलतान महम्मद शाहके दरबारमें बडा गौरव प्राप्त किया था । भारतके मुसलमान बादशाहोंके दरबारमें, जैन धर्मका महत्त्व बतलानेवाले और उसका गौरव बढानेवाले, शायद, सबसे पहले ये ही आचार्य हुए ।

इनकी प्रस्तुत रचनाके अवलोकनसे ज्ञात होता है, कि इतिहास और स्थल-भ्रमणसे इनको बडा प्रेम था । इन्होंने अपने जीवनमें भारतके बहुतसे भागोंमें परिभ्रमण किया था । गूजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, बराड, दक्षिण, कर्णाटक, तेलंग, विहार, कोशल, अवध, युक्तप्रांत और पंजाब आदिके कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थानोंकी उन्होंने यात्रा की थी । इस यात्राके समय, उस उस स्थानके बारेमें, जो जो साहित्यगत और परंपराश्रुत बातें उन्हें ज्ञात हुई उनको उन्होंने संक्षेपमें लिपिबद्ध कर लिया और इस तरह उस स्थान या तीर्थका एक कल्प बना दिया । और साथ-ही-में, ग्रन्थकारको संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंमें, गद्य और पद्य दोनों ही प्रकारसे, ग्रन्थरचना करनेका एकसा अभ्यास होनेके कारण, कभी कोई कल्प उन्होंने संस्कृत भाषामें लिख लिया तो कोई प्राकृतमें; और इसी तरह कभी किसी कल्पकी रचना गद्यमें कर ली तो किसीकी पद्यमें । किसी एक स्थानके बारेमें पहले एक छोटीसी रचना कर ली और फिर पीछेसे कुछ अधिक वृत्त ज्ञात हुआ, और वह लिपिबद्ध करने जैसा प्रतीत हुआ, तो उसके लिये परिशिष्टके तौर पर और एक कल्प या प्रकरण लिख लिया गया । इस प्रकार भिन्न भिन्न समयमें और भिन्न भिन्न स्थानोंमें, इन कल्पोंकी रचना होनेसे, इनमें किसी प्रकारका कोई क्रम नहीं रह सका।

2

§ ३. ग्रन्थरचनाकी कालावधि

ग्रन्थकी इस प्रकार खण्डशः रचना होते रहनेके कारण सारे ही संग्रहके संपूर्ण होनेमें बहुत दीर्घ समय व्यतीत हुआ मालूम देता है । कमसे कम ३० से अधिक वर्ष जितना काल लगा हुआ होगा । क्यों कि, जिन कल्पोंमें रचनाका समय-सूचन करनेवाला संवत् आदिका उल्लेख है, उनमें सबसे पुराना संवत् १३६४ मिलता है जो **वैभारगिरि**कल्प [क्र० ११, पृ० २३] के अन्तमें दिया हुआ है । ग्रन्थकारका किया हुआ ग्रन्थकी समाप्तिका सूचक जो अन्तिमोल्लेख है, उसमें संवत् १३८९ का निर्देश है । इससे २५ वर्षोंके जितने कालका सूचन तो, स्वयं ग्रन्थके इन दो उल्लेखोंसे ही ज्ञात हो जाता है; लेकिन वैभारगिरि कल्पके पहले भी कुछ कल्पोंकी रचना हो गई थी, और संवत् १३८९ के बाद भी कुछ और कल्प या कृति अवश्य बनी थी, जिसका कुछ स्पष्ट सूचन ग्रन्थगत अन्यान्य उल्लेखोंसे होता है । इसी कारणसे, ग्रन्थ-समाप्ति-सूचक जो कथन है वह, किसी प्रतिमें तो कहीं मिलता है और किसीमें कहीं । और यही कारण, प्रतियोंमें कल्पोंकी संख्याका न्यूनाधिकत्व होनेमें भी है ।

§ ४. ग्रन्थगत विषय-विभाग

इस ग्रन्थमें, भिन्न भिन्न विषय या स्थानोंके साथ सम्बन्ध रखनेवाले सब मिला कर ६०–६१ कल्प या प्रकरण हैं । इनमें से, कोई ११–१२ तो स्तुति-स्तवनके रूपमें हैं, ६–७ चरित्र या कथाके रूपमें हैं, और शेष ४०–४१, न्यूनाधिकतया, स्थानवर्णनात्मक हैं । पुनः, इन स्थानवर्णनात्मक कल्पोंमेंसे, **चतुरशीति महातीर्थनामसंग्रह** जो कल्प [क्रमांक ४५] है उसमें तो प्रायः सभी प्रसिद्ध और ज्ञात तीर्थस्थानोंका मात्र नाम-निर्देश किया गया है । **पार्श्वनाथ**कल्प [क्र० ६] में पार्श्वनाथके नामसे सम्बद्ध ऐसे कई स्थानोंका उल्लेख है । **उज्जयन्त** अर्थात् **रैवतगिरि**का वर्णन करने वाले भिन्न भिन्न ४ कल्प [क्र० २–३–४–५] हैं । **स्तंभनक तीर्थ** और **कन्यानयमहावीर तीर्थ**के सम्बन्धमें दो दो कल्प हैं । इस प्रकार, अन्य विषय वाले तथा पुनरावृत्ति वाले जितने कल्प हैं उनको छोड कर, केवल स्थानोंकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो, इस ग्रन्थमें कुल कोई ३७–३८ तीर्थ या तीर्थभूत स्थानोंका, कुछ इतिहास या स्थानपरिचय-गर्भित वर्णन दिया हुआ मिलता है ।

§ ५. स्थानोंका प्रान्तीय विभाग

यदि इन सब स्थानोंको प्रान्त या प्रदेशकी दृष्टिसे विभक्त किये जायं तो इनका पृथक्करण कुछ इस प्रकार होगा–

गूजरात और काठियावाड

- शत्रुंजयमहातीर्थ [क्र० १]
- उज्जयन्त (रैवतगिरि) तीर्थ [क्र० २–३–४–५]
- अश्वावबोधतीर्थ [क्र० १०]
- स्तंभनकपुर [क्र० ६, ५९]
- अणहिलपुरस्थित अरिष्टनेमि [क्र० २६]
- ,, कोकावसति [क्र० ४०]
- शंखपुरतीर्थ [क्र० २७]
- हरिकंखीनगर [क्र० २९]

युक्तप्रान्त और पंजाब

- अहिच्छत्रपुर [क्र० ७]
- हस्तिनापुर [क्र० १६, ५०]

राजपूताना और मालवा

- अर्बुदाचलतीर्थ [क्र० ८]
- सत्यपुरतीर्थ [क्र० १७]
- शुद्धदन्तीनगरी [क्र० ३१]
- फलवर्द्धितीर्थ [क्र० ६०]
- ढींपुरीतीर्थ [क्र०४३–४४]
- कुडुंगेश्वरतीर्थ [क्र० ४७]
- अभिनंदनदेवतीर्थ [क्र० ३२]

अवध और बिहार

- वैभारगिरि [क्र० ११]
- पावा या अपापापुरी [क्र० २१, १४]
- पाटलीपुत्र [क्र० ३६]

ढिल्ली या दिल्ली [क्र० ५१]
मथुरा [क्र० ९]
वाराणसी [क्र० ३८]
कौशांबी [क्र० १२]

चंपापुरी [क्र० ३५]
कोटिशिला [क्र० ४१]
कलिकुंडकुर्कुटेश्वर [क्र० १५]
मिथिला [क्र० १९]
रत्नपुर [क्र० २०]
कांपिल्यपुर [क्र० २५]
अयोध्यापुरी [क्र० १३]
श्रावस्तीनगरी [क्र० ३७]

दक्षिण और वराड

नासिक्यपुर [क्र० २८]
प्रतिष्ठानपत्तन [क्र० २३]
अन्तरिक्षपार्श्वतीर्थ [क्र० ५८]

कर्णाटक और तेलंगण

कुल्यपाक माणिक्यदेव [क्र० ५२, ५७]
आमरकुंड पद्मावती [क्र० ५३]
कन्यानयमहावीर [क्र० २२, ५१]

§६. विस्तृत विवेचन दूसरे भागमें

ग्रन्थगत इन सब स्थानोंका विस्तृत परिचय, इतिहास और हिंदी भाषान्तर आदि दूसरे भागमें देनेका हमारा संकल्प है। ग्रन्थकारका विशेष परिचय भी वहीं दिया जायगा। अतः यहां पर अधिक लिखना अनावश्यक होगा।

§७. प्रतियोंका परिचय

प्रस्तुत आवृत्तिके संशोधन और सम्पादन करनेमें हमने जिन पुरातन हस्तलिखित प्रतियोंका उपयोग किया है उनका परिचय इस प्रकार है–

A प्रति–अहमदाबादके डेलाके नामसे प्रसिद्ध जैन उपाश्रयमें संरक्षित ग्रन्थ भाण्डारकी प्रति । पत्र संख्या ५८। इस प्रतिमें सब कल्पोंका पूरा संग्रह है। कलिकुंड-कुर्कुटेश्वर नामका कल्प–प्रस्तुत आवृत्तिका क्रमांक १५–दो दफह लिखा हुआ है। प्रतिकी लिखावट साधारण ढंगकी है और पाठ-शुद्धि भी प्रायः साधारण ही है। हमने जितनी प्रतियोंका संग्रह किया उनमें यह सबसे पुरानी है। विक्रम संवत् १४६६ में यह लिखी गई है। इसके अंतमें जो पुष्पिका लेख है वह पृष्ठ १३५ पर मुद्रित है। उससे ज्ञात होता है कि 'श्रीमालीवंशमें पैदा होनेवाले देवा व्यवहारी और उसकी पत्नी हासलदेवीके मांडण, पद्मसिंह और मालदेव नामके तीन पुत्रोंने अपने माता-पिताके श्रेयोऽर्थ इस ग्रंथकी यह प्रति लिखवाई ।' इस प्रतिके अंतिम पृष्ठ पर ग्रन्थगत सब कल्पोंकी सूचि भी लिखी हुई है जो अन्य किसी प्रतिमें उपलब्ध नहीं होती।

B प्रति–उक्त भाण्डारकी दूसरी प्रति, जिसकी पत्र संख्या ३८ है । इस प्रतिमें कुल २९ कल्प लिखे हुए मिलते हैं। प्रस्तुत आवृत्तिके क्रमांक १४. १९. २३. २५. २९. ३१ से ३३, और ३५ से ५८ तकके कल्प इसमें अनुपलब्ध हैं। ग्रन्थकी समाप्तिका सूचक जो कथन है वह भी इसमें अनुल्लिखित है। प्रतिकी लिखावट सुंदर है और पाठ भी कुछ अधिक शुद्ध है। अंतमें लिखने-लिखाने वालेका कोई निर्देश नहीं है। 'शुभं भवतु श्रीश्रमण-संघस्य ॥ श्री॥' इतना ही उल्लेख किया हुआ है। इससे प्रतिके लिखे जानेके समयका कोई सूचन नहीं मिलता। पत्रोंकी स्थिति देखते हुए अनुमान किया जा सकता है कि प्रायः ४०० वर्ष जितनी पुरानी यह अवश्य होगी।

C प्रति–इसी भाण्डागारमें की तीसरी प्रति। पत्र संख्या ४१। इसमें कुल मिला कर ५२ कल्प लिखे हुए हैं। इसका प्रारंभ उज्जयंततीर्थकल्प–इस आवृत्तिके ४ थे कल्प–से होता है । पहले तीन कल्प इसमें बिल्कुल

ही नहीं हैं । बीचमें, **अपापावृहत्कल्प**, जो इस ग्रंथमें सबसे बडा कल्प है, वह भी नहीं है । तदुपरांत, **चतुरशीति महातीर्थनामसंग्रहकल्प** (क्रमांक ४५) और **अष्टापदगिरिकल्प** (क्रमांक ४९) भी इसमें सम्मीलित नहीं है । ग्रंथकारका किया हुआ ग्रंथ समाप्ति-सूचक जो कथन है, वह इस प्रतिमें, **व्याघ्रीकल्प-** (क्रमांक ४८) के अन्तमें–प्रति पत्र ३६ की प्रथम पृष्ठिपर–लिखा हुआ है । उसके बाद फिर **हस्तिनापुर स्तवन** आदि कल्प लिखे गये हैं (–द्रष्टव्य कोष्ठक) । इस प्रतिके कल्पक्रमसे, इस बातका कुछ आभास मिल सकता है कि यह ग्रंथ किस क्रमसे बना हुआ होगा । इसके अक्षर सुन्दर, और स्पष्ट है । पाठ भी बहुत कुछ शुद्ध है । अंतमें लिखने-लिखाने वालेका कोई निर्देश नहीं है । सम्भवतः यह भी चार सौ वर्ष जितनी पुरानी होगी ।

D प्रति–उसी स्थानकी ४ थी प्रति । पत्र संख्या ४५ । अक्षर अच्छे और सुवाच्य हैं परंतु पाठ साधारण है । इसमें कोई ३२ प्रकरण लिखे हुए हैं । इसका प्रारंभ **मथुराकल्प** (क्रमांक ९) से, और अंत **कोकावसतिपार्श्वनाथकल्प** (क्रमांक ४०) से होता है । इस प्रकार इसमें आदिके ८ और अंतके २१ कल्प या प्रकरण नहीं हैं, अतः यह एक प्रकारका अपूर्ण संग्रह है । इस प्रतिमें भी लिखने-लिखाने वालेका कोई पुष्पिका लेख नहीं है; इससे यह नहीं ज्ञात हो सकता कि यह प्रति कब लिखी गई है । परंतु, इसके अंतमें जो ५ पद्योंका एक छोटासा प्रशस्ति-लेख, जो कि पीछेसे लिखा गया मालूम देता है, उससे इतना ज्ञात हो सकता है कि विक्रम संवत्की १७ वीं शताब्दीके शेष चरणके पहले यह कभी लिखी गई होगी । इस प्रशस्ति-लेखसे विदित होता है कि–अकबर बादशाहने जिनको जगद्गुरुका पद प्रदान किया उन आचार्य हीरविजय सूरिके शिष्य आचार्य विजयसेनके पट्टधर आचार्य विजयतिलक सूरिके समयमें, विजयसेन सूरि-ही-के शिष्य रामविजय विबुधने, जो हैमव्याकरण, काव्यप्रकाश आदि शास्त्रोंके निष्णात पंडित थे, इस प्रतिको उस ज्ञानभंडारमें स्थापित की, जिसमें पंदरह लाख पुस्तकें† संगृहीत की गई थीं ।

Pa प्रति–पूनाके भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिरमें संरक्षित राजकीय-ग्रंथ-संग्रहकी ६२ पत्र वाली प्रति । यह प्रति संपूर्ण है और इसमें A प्रतिके समान ही सब कल्पोंका संग्रह है । सिर्फ **पंचकल्याणकस्तवन** (क्रमांक ५६) जो सोमसूरिकी कृति है, वह इसमें नहीं है । इस प्रकार इसमें कुल ५८ प्रकरण उपलब्ध हैं । **कलिकुंड-कुर्कुटेश्वर** नामका कल्प (क्रमांक १५) इसमें भी A प्रतिके समान दो दफह लिखा हुआ है । ग्रन्थ-समाप्ति-सूचक कथन इसमें **अष्टापदकल्प** (क्रमांक ४९) के अन्तमें–पृष्ठ ५३ की दूसरी पूंठी पर–लिखा हुआ है । इसके बाद फिर **हस्तिनापुरतीर्थस्तवन** आदि प्रकरण लिखे हुए हैं । अन्तमें फिर कोई दूसरा निर्देश नहीं है । लिपिकारने "सं० १५२७ वर्षे आषाढ सुदि ७ गुरौ सर्वत्र संख्या अलावा ग्रंथाग्रं ३६०२५ संख्या ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥" इस प्रकारका उल्लेख किया है जिससे यह प्रति कब लिखी गई इसका मात्र सूचन मिलता है । इसकी लिखावट अच्छी और स्पष्ट है । पाठ भी प्रायः बहुत कुछ शुद्ध मिलता है ।

Pb प्रति–यह प्रति भी पूनाके उक्त संग्रहकी है । इसकी पत्र संख्या ८५ है । इसमें आदिसे लेकर ५५ वें क्रमांक तकके प्रकरणोंका संग्रह है, और इसी क्रममें है । अन्तके ५ कल्प इसमें नहीं हैं । ग्रन्थ-समाप्ति-सूचक जो कथन है वह इसमें दो जगह लिखा हुआ मिलता है । एक तो Pa प्रतिकी तरह **अष्टापदकल्प** (क्रमांक ४९) के अंतमें–पत्र ७८ की द्वितीय पूंठी पर–और दूसरा अन्तिम पत्र पर, जहां **कल्याणकस्तवन** समाप्त

† इन पंदरह लाख पुस्तकोंसे मतलब पंदरह लाख श्लोकका मालूम देता है; न कि पंदरह लाख प्रतियों या पोथियोंका । रामविजय विबुधने अपने परिश्रमसे एक ऐसा ज्ञानभंडार स्थापित किया था जिसमें जितने ग्रंथ या प्रतियां थीं उनकी सब श्लोक संख्या, गिनने पर पंदरह लाख जितनी होती थी । शायद यह भंडार पाटणमें था ।

होता है । प्रति है तो पुरातन; लेकिन अन्तमें समय इत्यादिका सूचक कोई उल्लेख न होनेसे निश्चयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता । यह प्रति बिल्कुल बेपर्वाईसे लिखी गई प्रतीत होती है । लिपिकार कोई नया सिखाऊ और अपठित मालूम देता है । उसको पुरानी लिपिका बहुत कम परिचय है । संस्कृत-प्राकृत भाषाका उसको किञ्चित् भी ज्ञान नहीं है । भाषानभिज्ञताके कारण आकृतिसाम्यवाले अक्षरोंकी नकल करनेमें वह वारंवार गलती करता है और एक अक्षरकी जगह दूसरा अक्षर लिख डालता है । कहीं **तीर्थराज** के स्थान पर **नीर्धराज** लिख देता है तो कहीं **तत्र** की जगह **तव** या **नव** बना देता है । ५ वें प्रकरणका पहला पद **पच्छिमदिसाए** है जिसको उसने **एत्थिमहिसाण** लिखा है–**प** का **ए**, **च्छि** का **त्थि**, **दि** का **हि** और **ए** का **ण** में परिवर्तन कर ६ अक्षर वाले एक ही पदमें ४ अक्षर उसने बदल दिये हैं । कहीं **द्रष्टव्यं** की जगह **द्रव्यं** और **गंतव्यं** की जगह **गव्यं** लिख कर शब्दके बीचके अक्षर ही उडा देता है, तो कहीं अनुस्वारको आगे पीछे लिख कर **एतं रचयां°** का **एतरंचयां°** बना डालता है । किस अक्षरका कौन काना है और कौन मात्रा है इसका भी उसको ठीक ठीक खयाल नहीं रहता; इस लिये **अवरजे**की जगह **अचराज** कर देता है और **पात्र**के बदले **पत्रे** लिख लेता है । इस तरह लिपिकर्ताके अज्ञानके कारण इस प्रतिका पाठ बहुत जगह भ्रष्ट हो गया है । हमने इसका उपयोग प्रायः वहीं किया है जहां और और प्रतियोंमें खास सन्देह उत्पन्न हुआ है । पंचकल्याणक स्तवन, जो सोमसूरिकी कृति है, A प्रतिके सिवा इसी प्रतिमें उपलब्ध है । उसका पाठ निश्चित करनेमें इसीका सहारा मिला ।

P प्रति–पूनावाले उसी संग्रहमेंकी एक तीसरी प्रति जिसकी पत्रसंख्या ३२ है । इस प्रतिमें कुल ४८ कल्प लिखे हुए हैं । इसमें **पंचपरमेष्ठिनमस्कार** नामका जो कल्प है वह ऊपरवाली और और प्रतियोंमें नहीं मिलता । यह कल्प इसमें **चतुरशीति तीर्थनामसंग्रहकल्प**के अन्तमें–पत्र २६ की पहली पूंठी पर–लिखा हुआ है । हमने इसको परिशिष्टके रूपमें सबके अन्तमें रखा है । इसके सिवा इस संग्रहका जो क्रम है वह सब प्रतियोंसे भिन्न है । कई कल्प, अन्यान्य प्रतियोंके हिसाबसे, आगे-पीछे लिखे हुए हैं । उदाहरणके लिये, अन्य सब प्रतियोंमें **उज्जयन्तस्तव**का क्रमांक ३ रा है, इसमें उसका ५ वां है । इसके बाद ही **अंबिकाकल्प** लिखा हुआ है जो A B और Pa प्रतिमें सबके अन्तमें दिया हुआ है । **अंबिकाकल्प**के बाद **कपर्दियक्षकल्प** लिखा गया है जिसका क्रमांक अन्यान्य प्रतियोंके मुताबिक ३० वां है । **अर्बुदकल्प** जिसका क्रमांक अन्य संग्रहानुसार ८ वां है उसका इसमें ३८ वां है । इस प्रकार प्रायः बहुतसे कल्प इसमें आगे-पीछे लिखे हुए हैं । संपूर्ण तालिका कोष्ठकमें दी गई है जिससे जिज्ञासु पाठक मिलान कर सकते हैं । **वस्तुपाल-तेजःपालमन्त्रिकल्प** (क्रमांक ४२) इसमें लिखा हुआ नहीं है लेकिन उसके स्थानपर, उस कल्पमें जो अन्तमें ३ श्लोक लिखे हुए हैं [देखो पृष्ठ० ८०, पंक्ति १८–२०] वे इसमें दिये हुए हैं । **अन्तरिक्षपार्श्वनाथकल्प** अन्यान्य संग्रहोंमें प्राकृत भाषामें लिखा हुआ है, इसमें उसका संस्कृत रूपान्तर है । इसी तरह **हरीकंखीनगरस्थितपार्श्वनाथकल्प** (क्रमांक २९) का भी इसमें संस्कृत भाषान्तर दिया हुआ है । इस कल्पके अन्तमें लिखा है कि–

इति श्री [हरि] कंखीनगरमंडनश्रीपार्श्वनाथकल्पः प्रभुश्रीजिनप्रभसूरिभिः कृतयो (?) प्राकृते । न वा० गुणक [ल?] श श्रीराजगच्छीय संस्कृते मज्झधत्त (?) ॥ (पत्र १३, पूंठी २, पंक्ति १९–२०)

इस अशुद्धिबहुल पंक्तिका तात्पर्यार्थ यह मालूम देता है, कि राजगच्छीय वा० (वाचक) गुणक [ल] श नामके किसी पंडितने, जिनप्रभसूरिकृत प्राकृत कल्पको संकृतमें बनाया । इससे प्रतीत होता है कि उक्त **अन्तरिक्षपार्श्वनाथकल्प**को भी उसीने संस्कृतमें रूपान्तरित किया होगा । क्यों कि ये दोनों कल्प इस प्रतिमें एक

साथ लिखे हुए हैं । इस संग्रहमें १५. १६. १८. ३३. ३४. ४२. ४६. ५१ से ५६ तक–इस प्रकार १३ कल्प अनुपलब्ध हैं ।

यद्यपि इस प्रतिमें कल्पोंका क्रम, अन्य सब प्रतियोंसे भिन्न प्रकारका है; तथापि वह कुछ अधिक संगत मालूम देता है । गिरनार अर्थात् उज्जयंत अथवा रैवतक पर्वतसे संबंध रखनेवाले जो ४ कल्प प्रस्तुत ग्रन्थमें हैं, वे जिस क्रमसे इस प्रतिमें लिखे गये हैं वह क्रम अधिक ठीक लगता है । उन्हींके बाद इसमें **अंबिकादेवी**-का कल्प है जिसका भी सम्बन्ध एक प्रकारसे रैवतक पर्वतके साथ होनेसे, उसका यह स्थान ठीक सम्बन्धयुक्त मालूम देता है । अम्बिकाकल्पके बाद ही जो **कपर्दियक्षकल्प** लिखा हुआ है वह भी उचित स्थानस्थित दिखाई दे रहा है । बल्कि इस कल्पके अन्तमें तो ग्रन्थकारका कथन भी इस बातको सूचित करता है कि उन्होंने **अम्बादेवी** और **कपर्दियक्ष,** इस **कल्पयुग**की (देखो पृष्ठ ५६ का अन्तिम उल्लेख) एक साथ रचना की । ऐसा उल्लेख होने पर भी ये दोनों कल्प, और सब प्रतियोंमें क्यों भिन्न-क्रममें लिखे गये मिलते हैं इसका कोई कारण समझमें नहीं आता । उसमें भी अम्बिकाकल्प तो बिल्कुल ग्रन्थके अन्तमें जा पडा है जिससे बहुतसी प्रतियोंमें तो वह अनुल्लिखित ही रह जाता है । इसी तरह क्रमांक २६ और ४० वाले कल्प इस प्रतिमें साथ साथ लिखे हुए मिलते हैं जो अधिक यथास्थित कहे जा सकते हैं । क्यों कि दोनोंका स्थान एक ही (पाटण) है । सबके अन्तमें **कन्यानयनीयमहावीरप्रतिमाकल्प** (क्रमांक २२) रखा है और उसके अंतमें ग्रन्थ-समाप्तिसूचक कथन दिया है–सो भी एक प्रकारसे सम्बन्धयुक्त दिखाई देता है ।

इस प्रतिमें जिन कल्पोंका संग्रह है उनके अवलोकनसे मालूम देता है कि प्रायः मुख्य मुख्य कल्प इसमें सब आगये हैं । जो इसमें संगृहीत नहीं है उनमें **कलिकुंडकुर्कुटेश्वर** (१५), **हस्तिनापुर** (१६), **प्रतिष्ठानपुर** (३३), **सातवाहनचरित्र** (३४), **वस्तुपाल-तेजःपाल** (४२), **कन्यानयनीयपरिशेष** (५१) और **अमरकुंडपद्मावती** (५३) नामके कल्प कुछ महत्त्वके हैं । बाकीके कल्प तो नाम मात्रके कल्प हैं । वास्तवमें वे तो स्तुति-स्तोत्र हैं जिनका ग्रन्थगत उद्देश्यके साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं है । इससे यह ज्ञात होता है कि जिसने इस प्रतिको तैयार किया है उसने कुछ विचारपूर्वक प्रयत्न किया है । इस प्रयत्नका कर्ता कौन है उसका कोई निर्णायक उल्लेख नहीं प्राप्त होता । क्या जिस राजगच्छीय वाचक गुणकलश (?) ने उक्त दो कल्पोंका संस्कृत रूपांतर करनेका प्रयत्न किया है उसीने तो यह संग्रह इस क्रममें नहीं ग्रथित किया हो ?।

इस प्रति के अक्षर यद्यपि स्पष्ट और सुवाच्य हैं तथापि पाठशुद्धि कोई विशेष उल्लेखयोग्य नहीं है । हां, कहीं कहीं इसका पाठ, अन्य प्रतियोंकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त मिल जाता है जो सन्दिग्ध स्थानमें ठीक मददगार हो जाता है ।

प्रतिके अन्तमें जो पुष्पिकालेख है उससे विदित होता है कि–संवत् १५६९ के आषाढ महिनेमें–सुदि १ सोमवार और पुनर्वसुनक्षत्रवाले दिनको–वैरिसिंहपुरके रहनेवाले श्रीमाली ज्ञातिके बहकटा गोत्रीय महं० जिणदत्तके पुत्र, महं० भाजाके पुत्र, महं० रायमल नामक श्रावकने इस ग्रन्थको लिखवा कर, खरतर गच्छके आचार्य श्रीजिनभद्र सूरिके शिष्य आचार्य श्रीजिनचंद्र सूरिके शिष्य आचार्य श्रीजिनेश्वर सूरिके शिष्य वाचक साधुकीर्ति गणीको समर्पित किया । यह पुष्पिकालेख ग्रन्थान्तमें, पृष्ठ ११० पर, मुद्रित है ।

Pc प्रति-उपर्युक्त स्थानमेंकी एक चौथी प्रति । इसकी पत्र संख्या २४ है । यह एक अपूर्ण संग्रह है । इसका प्रथम पत्र है उस पर ३० का क्रमांक लिखा हुआ है । ३० से लेकर ५३ तकके पत्रे इसमें उपलब्ध हैं । इसका प्रारंभ **चम्पापुरीकल्प** (क्रमांक ३५) से होता है, और समापन **कन्यानयनीयमहावीरप्रतिमाकल्प** (क्र० २२) के साथ होता है । इसमें सब मिलाकर १६ कल्प लिखे हुए हैं और उनका क्रम इस प्रकार है–

१ चम्पापुरीकल्प
२ पाटलीपुत्रपुरकल्प
३ वाणारसी नगरीकल्प
४ मन्त्रिद्वयकल्प, (मात्र ३ श्लोक)
५ कुडुंगेश्वरनाभेयकल्प
६ अर्बुदकल्प
७ अभिनन्दनदेवकल्प
८ प्रतिष्ठानपुरकल्प (स्तोत्र)
९ ढींपुरीस्तोत्र
१० नन्दीश्वरकल्प
११ महावीरगणधरकल्प
१२ चतुरशीति तीर्थनामसंग्रहकल्प
१३ पंचपरमेष्ठिनमस्कारकल्प
१४ रत्नवाहपुरकल्प
१५ पावापुरीकल्प (बृहत्)
१६ कन्यानयनीयमहावीरकल्प

इस क्रमके देखनेसे ज्ञात होता है कि, सिर्फ पहले कल्पको छोड कर, बाकी के १५ ही कल्प, ठीक उसी क्रममें लिखे हुए हैं, जिस तरह उपर्युल्लिखित P प्रतिमें लिखे हुए हैं। १ से २८ तकके पत्र अनुपलब्ध होनेसे, इस संग्रहमें कुल कितने कल्प होंगे और वे सब किस क्रममें होंगे, उसका कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता और निश्चयात्मक रूपसे यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह संग्रह ठीक P संग्रह-ही-का अनुसरण करनेवाला है। ग्रन्थ-समाप्ति-सूचक कथन इसमें अन्तिम कल्पके अन्तमें लिखा हुआ है। लेकिन लिखावट और अक्षरोंके देखनेसे मालूम पडता है कि यह कल्प—जो दो पन्नोंमें है—पीछेसे लिख कर इस प्रतिमें मिलाया गया है । क्यों कि असल लिपिकर्ताने अपनी यह प्रति ५१ वें पत्रमें समाप्त कर दी है और उसका सूचक पुष्पिकालेख भी अन्तमें इस तरह लिख दिया है—

॥ समाप्तः श्रीअपापाकल्पः । श्रीदीपोत्सवकल्पश्च ॥ संवत् १५०५ वर्षे फागुणवदि ११ गुरौ । धंधूकानगरस्थाने वा० धर्मसुंदर गणिना ल(लि)खितं ॥

इस प्रतिमें दो-तीन तरह की लिखावट दिखाई देती है; इससे मालूम होता है कि दो-तीन व्यक्तियोंने मिल कर इसे लिखा है। पाठशुद्धि साधारण है।

E प्रति—पूना ही के उक्त संग्रहमेंकी पांचवीं प्रति जिसमें केवल एक **अपापाबृहत्कल्प** (क्र० २०) लिखा हुआ है। प्रति पुरातन और अच्छी है। लिखे जानेके समयका कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन 'ऋषि भरमा—ऋषि मोकाके पढनेके लिये मुनि चांपाने पींडरवाडा ग्राममें इस प्रतिको लिखा' इतना पता अन्तिम पुष्पिका-लेखसे जरूर लगता है।

§८. पाठभेद-संग्रहकी पद्धति

पाठभेदोंके संग्रह करनेकी हमारी जो पद्धति है उसका परिचय हमने प्रबन्धचिन्तामणिके प्रथम भागकी प्रस्तावनामें कुछ दे दिया है। इस ग्रन्थमें भी हमने उसी पद्धतिका अनुसरण किया है । व्याकरण या शब्दके स्वरूपकी दृष्टिसे जो जो पाठ हमें शुद्ध मालूम देते हैं उन्हें हम पाठभेदके रूपमें संगृहीत कर लेते हैं । लिपि-कर्ताओंकी अज्ञानता अथवा अनवधानताके कारण जो अगणित शब्द-अशुद्धियां जहां तहां प्रतियोंमें दृष्टिगोचर होती रहती हैं उन सबका संचय कर, ग्रन्थकी केवल पाद-टिप्पनियोंका कलेवर बढाना हम निरर्थक समझते हैं।

§९. तीर्थकल्पकी प्रसिद्धि

स्वर्गीय प्रोफेसर पी. पीटर्सनने, बम्बई इलाखेमें संस्कृत ग्रन्थोंका अन्वेषण कर उस विषयकी जो ६ रीपोर्ट पुस्तकें लिखीं, उनमेंकी ४ थी रीपोर्टमें, जिनप्रभसूरि रचित इस तीर्थकल्पका उन्होंने कुछ परिचय दिया और

कल्पोंकी नामावली प्रकाशित की*; तबसे इतिहासान्वेषक विद्वानोंका लक्ष्य इस ग्रन्थकी ओर आकर्षित हुआ। स्वर्गवासी शंकर पाण्डुरंग पण्डित एम्. ए. ने स्वसम्पादित गउडवहो नामक प्राकृत काव्य-ग्रन्थकी प्रस्तावनामें, तीर्थकल्पगत मथुराकल्पमेंसे आमराज और बप्पभट्टी सूरिके सम्बन्धका एक उल्लेख उद्धृत किया†। तदनन्तर, प्रवर पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. जी. ब्युहरने, मथुराके जैन शिला-लेखोंका सम्पादन और विवेचन करते समय, इस ग्रन्थका साद्यन्त अवलोकन किया और उसीके सिलसिलेमें मथुराकल्पपर एक स्वतंत्र निबन्ध लिखकर, वह मूल कल्प, उसके अंग्रेजी भाषान्तरके साथ, विएना (आस्ट्रिया) से प्रकट होनेवाले प्राच्यविद्याविषयक राजकीय वृत्तपत्र (जर्नल) में प्रकाशित किया‡। बादमें और भी कई विद्वानोंने इस ग्रन्थके ऐतिहासिक अवतरणोंका जहां तहां उल्लेखादि करके इसकी उपयोगिता तर्फ तज्ज्ञोंके मनमें उत्सुकता उत्पन्न की।

§ १०. प्रस्तुत प्रकाशन

कोई २० वर्ष पहले, जब हमने बडौदामें पूज्यपाद प्रवर्तक श्रीमान् कान्तिविजयजी महाराजकी चरणसेवामें रहते हुए, विज्ञप्तित्रिवेणि आदि अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थोंका संशोधन-संपादन-प्रकाशनादिका कार्य शुरू किया, तभी, इस ग्रन्थको भी प्रकाशमें लानेके लिये हमारा प्रयत्न शुरू हुआ था। प्रवर्तकजी महाराजके शिष्यप्रवर और ग्रन्थ-संशोधन-सम्पादनादिकार्यमें अविरत परिश्रम करनेवाले तथा पाटण आदिके ज्ञानभाण्डारोंकी सुव्यवस्था करनेमें अथक उद्यम करनेवाले, यथार्थ जिनप्रवचनोपासक, सुचतुर मुनिवर श्रीचतुरविजयजी महाराजके प्रयत्नसे, सुरतके श्रीमन्मुनिमोहनलालजी ज्ञानभंडारमेंसे इस ग्रन्थकी ताडपत्र पर लिखी हुई एक पुरातन प्रति, तथा बडौदा खंभायत आदिके भंडारोंमेंसे कुछ और प्रतियां भी प्राप्त की गईं। इस प्रकार प्रतियां इकट्ठी होने पर, प्रेसके लिये, उन परसे कॉपी तैयार करनेका हम उपक्रम करना ही चाहते थे कि, उसी बीचमें, पूनासे, प्रो० देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकर, जो उन दिनोंमें आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इन्डिया वेस्टर्न सर्कलके सुप्रीन्टेन्डेन्ट थे, प्रसंगवश बडौदामें आये और जैन उपाश्रयमें हम लोगोंसे मिले। बातचीतमें उन्होंने कहा कि हम और जयपुरवाले पण्डित केदारनाथजी मिलकर तीर्थकल्पका संपादन करना चाहते हैं और कलकत्ताकी एशियाटिक सोसायटी द्वारा उसे प्रकाशित कराना चाहते हैं। अध्यापक भाण्डारकर जैसे समर्थ विद्वानके हाथसे इस ग्रन्थका सम्पादन होना जान-सुन कर हमको बडा आनन्द हुआ और हमने अपना उक्त कार्य स्थगित कर दिया; इतना ही नहीं लेकिन, उनके अनुरोध करने पर, उनकी करवाई हुई जो प्रेसकॉपी थी उसे हमने और प्रवर्तकजी महाराजके विद्वान् प्रशिष्य पुण्यमूर्ति मुनिवर श्रीपुण्यविजयजीने मिलकर, उक्त ताडपत्रकी प्रतिके साथ मिलान कर तथा पाठान्तरादि दे कर शुद्ध भी कर दिया। इसके कुछ वर्ष बाद, उक्त सोसायटी द्वारा, इस ग्रन्थका ९६ पृष्ठ जितना एक हिस्सा प्रकाशित हुआ जिसमें प्रस्तुत आवृत्तिके पृष्ठ ३० जितना भाग मुद्रित हुआ है। तदनन्तर, आज कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन उसके आगेका कोई हिस्सा अभी तक प्रकाशित नही हुआ; और न मालूम भविष्यमें कब होगा। भाण्डारकर महाशय सम्पादित आवृत्तिका इस प्रकार अनिश्चित भविष्य देख कर, हमने अपने ढंगसे, इस ग्रन्थको, उसी पुराने संकल्पके अनुसार, तैयार कर, सिंघी जैन ग्रन्थमालाके एक पुष्पके रूपमें, जिज्ञासु विद्वानोंके हाथमें समर्पित करना समुचित समझा है।

---

* द्रष्टव्य—P. Peterson. A fourth Report of operations in search of sanskrit Mss. in the Bombay Circle, 1886-92.

† देखो बॉम्बे संस्कृतसिरीझमें प्रकाशित गउडवहो. Introduction. P. Clii.

‡ G. BÜHLER. A Legend of the Jaina Stūpa at Mathura.—Sitzungsberichte der phil.-hist. Class der kais. Akademie der Wissenschaften Wien, 1897.

§११. तीर्थकल्पके समविषयक अन्य ग्रन्थ

विस्तृत जैन इतिहासकी रचनाके लिये, जिन ग्रन्थोंमेंसे, विशिष्ट सामग्री प्राप्त हो सकती है उनमें (१) **प्रभावकचरित्र,** (२) **प्रबन्धचिन्तामणि,** (३) **प्रबन्धकोष** और (४) **विविधतीर्थकल्प** ये ४ ग्रन्थ मुख्य हैं। ये चारों ग्रन्थ परस्पर बहुत कुछ समान विषयक हैं और एक दूसरेकी पूर्ति करने वाले हैं। जैन धर्मके ऐतिहासिक प्रभावको प्रकट करनेवाली, प्राचीनकालीन प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियोंका थोडा-बहुत परिचय इन ४ चारों ग्रन्थोंके संकलित अवलोकन और अनुसन्धान द्वारा हो सकता है। इस लिये हमने इन चारों ग्रन्थोंको एक साथ, एक ही रूपमें, एक ही आकारमें, और एक ही पद्धतिसे सम्पादित और विवेचित कर, इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित करनेका आयोजन किया है। इनमेंसे प्रबन्धचिन्तामणिका, मूल-ग्रन्थात्मक पहला भाग, गत वर्षमें प्रकट हो चुका है और उसका सम्पूरक **'पुरातनप्रबन्धसंग्रह'** नामका दूसरा भाग इस ग्रन्थके साथ ही प्रकट हो रहा है। **प्रबन्धकोष**का मूलग्रन्थात्मक पहला भाग भी इसका सहगामी है। **प्रभावकचरित्र** अभी प्रेसमें है सो भी थोडे ही समयमें, अपने इन समवयस्कोंके साथ, विद्वानोंके करकमलोंमें इतस्ततः सञ्चरमाण दिखाई देगा। इन चारों ग्रन्थोंका, इस प्रकार शुद्धिसंस्कारपूर्वक मूलस्वरूपका अवतार-कार्य पूरा होने पर, फिर इनका वर्तमान राष्ट्रभाषा (हिन्दी) में द्वितीय अवतार होगा, जो ऐतिहासिक अन्वेषणवाले विवेचनादिसे अलंकृत और स्थानविशेषोंके चित्रादिसे विभूषित होगा।

वैशाखी पूर्णिमाः संवत् १९९०।
अनेकान्तविहार; भारतीनिवास।
अहमदाबाद

जिन विजय